देव वास्तु की विविध शैलियों का विमर्श

-डॉ. देवेन्द्र नाथ ओझा

सहायक प्रोफेसर,

एमिटी संस्कृत अध्ययन एवं शोध संस्थान

एमिटी विश्वविद्यालय, नोएडा (उत्तर प्रदेश)

भारत एक आध्यात्मिक देश है। अत: भारतीय जीवन-दर्शन भी आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत है। भारत में आध्यात्मिक उपादानों को लेकर कला के विराट् स्वरूप का निर्माण किया गया है। भारतीय कलाकारों ने बाह्य सौंदर्य के वशीभूत हो कला की उद्‌भावना नहीं की, वरन् उनकी अंत:प्रेरणा और उसके भीतर प्रसुप्त दैवी विश्वासों ने ही उनके विचारों को रंग, रूप और वाणी प्रदान की है। अध्यात्म से शून्य कला मानव का मनोरंजन भले ही कर सकती है, किंतु लोकहितकारी तथा उपादेय नहीं हो सकती। भारतीय वास्तुकला भी इसका अपवाद नहीं है।

"वास्तु" शब्द की उत्पत्ति वस् धातु से हुई है। कोई निर्मिति या योजना "वास्तु" है। सृष्टि में जितनी वस्तुएँ हैं, सभी "वास्तु" में समाहित हैं। समस्त भूमंडल तथा सौरमंडल वास्तुकला के प्रतिपाद्य विषय हैं। इस दृष्टि से वास्तुकला अत्यंत व्यापक एवं विराट है। भारतीय स्थापत्य जितना व्यापक है, उतना ही प्राचीन भी। यहाँ के आदि ग्रंथ वेद माने जाते हैं। अथर्ववेद में स्थापत्यवेद नामक एक उपवेद भी माना गया है। इससे विदित होता है कि इस देश में अति प्राचीन काल से ही शास्त्रानुकूल पद्धति पर स्थापत्य-कला विकसित हो चुकी थी। इसकी पुष्टि मत्स्यपुराण के इस कथन से होती है :

भृगुरत्रिवशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः।।

ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च।
वसुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रः बृहस्पति।।

अष्टादशैते विख्याताः शिल्पशास्त्रोपदेशकाः।

वास्तुशास्त्र के इन अट्‌ठारह आचार्यों में विश्वकर्मा तथा मय का नाम सर्वविदित है। विश्वकर्मा देवताओं के तथा मय असुरों के स्थपति माने जाते हैं।

महाभारत में मयासुर का उल्लेख है, जिसने पांडवों के अनुपम सभा-भवन का निर्माण किया था। आज भी यहाँ के शिल्पी विश्वकर्मा की पूजा बड़ी निष्ठा के साथ संपन्न करते हैं। ब्राह्मणग्रन्थों में नागों का उल्लेख है, जो तक्षण-कला में निष्णात थे। उनके अधिपति नग्नजित वास्तु-आचार्यों में परिगणित थे, जिनका "चित्रलक्षण" ग्रंथ संसार प्रसिद्ध रचना है। बौद्ध जातक एवं पाली-ग्रन्थों में भी नागों की तक्षण कला तथा चित्रकला का विशद वर्णन है। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा के पुरातात्त्विक उत्खनन से प्राप्त महल, स्नानागार तथा नालियों का अस्तित्व भारतीय स्थापत्य की प्राचीनता की पुष्टि करते हैं। वात्स्यायन के "कामसूत्र" में विभिन्न कलाओं का वर्णन है। इनमें वास्तुकला और तक्षण-कला का भी उल्लेख है। अत एव, भारतीय स्थापत्य अति प्राचीन है, जो आर्यों एवं अनार्यों की सम्मिलित देन है।

भारतीय वास्तु में देव वास्तु के अंतर्गत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना मंदिर है। मन्दिर के पर्यायवाची अनेक शब्द प्राचीन ग्रन्थों में प्रयुक्त मिलते हैं। उदाहरणार्थ देवालय, देवगृह, देवागार, देवकुल, देवतायतन, देवस्थान आदि। इन सभी शब्दों से देवता के निवास स्थान का बोध होता है, अत एव मंदिर की कल्पना देवताओं के आवास के रूप में की गई है। मन्दिर का सर्वप्रथम उल्लेख शतपथब्राह्मण में मिलता है। इन मन्दिरों में दो मंडप होते थे, जो स्तंभों तथा बल्लों पर आश्रित रहते थे। इनकी छतों पर नरकट एवं चटाई का आच्छादन होता था, परन्तु प्रमाणस्वरूप इस युग का कोई मन्दिर उपलब्ध नहीं है। बाद के ग्रन्थों में भी मन्दिर का उल्लेख है, किन्तु इसकी संपुष्टि के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। देवमंदिरों के निर्माण की कोई-न-कोई पृष्ठभूमि होती है। पाश्चात्य स्थापत्य का उद्‌भव पार्थिव तत्वों से हुआ है। उसकी पृष्ठभूमि सौंदर्य है। मानव-शरीर के सौष्ठव की अभिव्यक्ति ही वहाँ की कला का उद्देश्य रहा है। किंतु, भारतीय स्थापत्य धर्म अथवा यज्ञ के रूप में संपन्न किया गया है। भारतीय संस्कृति का मूलाधार देवतत्त्व है। यह देवभावना यहाँ के प्रत्येक क्रियाकलाप में निहित है। अतएव, मंदिरों के निर्माण में भी यहाँ देवतत्त्व को ही प्रमुखता दी गई है। यह पूर्णरूपेण निराकार ब्रह्म की साकार प्रतिष्ठा है। अतएव, यहाँ मंदिरों के निर्माण की आधार-भूमि विशुद्ध आध्यात्मिक है, जो धर्म और दर्शन से अनुप्राणित है। मंदिर की तुलना मानव-शरीर से की गई है। पत्थर, पर्वत, काष्ठ तथा धातु इस मंदिर-रूप शरीर की अस्थियाँ हैं, जिनसे इसका ढाँचा बनता है। मंदिर की निर्माण-शैली ही इस शरीर की आकृति है। जिस प्रकार शरीर को विविध प्रकार के आभूषण तथा परिधान से सुसज्जित किया जाता है, उसी प्रकार मंदिर को कलात्मक रचनाओं से अलंकृत किया जाता है। मंदिर का जो रूप हमारे समक्ष वर्तमान है, उसका वास्तु-विधान किसी व्यक्तिविशेष अथवा युगविशेष की देन नहीं है। यह तो कलाकारों के युग-युगांत के अनुभव, अनुसंधान, प्रयोग तथा साधना की

परिणति है।

ब्राह्मणधर्म में यज्ञ, हवन आदि उपासना के प्रतीकात्मक रूप थे, जिनके सहारे अध्यात्म की प्राप्ति होती थी, लेकिन ज्ञान के अभाव में उपासना का वास्तविक रूप विकृत हो गया तथा विधि-विधान एक आडम्बर-मात्र बनकर रह गया। ऐसी ही परिस्थिति में जैन एवं बौद्ध धर्म का अभ्युदय हुआ। इन्होंने वैदिक कर्म काण्ड की कटु आलोचना की। युग की परिस्थिति के अनुरूप इन्होंने ऐसा धर्म जनता के समक्ष रखा, जो अत्यन्त सजीव, व्यावहारिक एवं मंगलमय था। इनकी उपासना के मार्ग अत्यन्त सरल थे। फलस्वरूप, कर्मकांड के भार से दबी जनता इस धर्म से प्रभावित होकर इस ओर अग्रसर हुई। साधारण जनता ही नहीं, वरन् राजा-महाराजाओं ने भी इसे सहर्ष अपनाया। ये धर्म आचारप्रधान थे, पूजन-अर्चन का प्रयोजन ही नहीं था। ऐसी परिस्थिति में मन्दिरों के निर्माण की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। मन्दिरों के स्थान पर चौत्यों एवं विहारों का निर्माण होने लगा। कुषाण-काल तक यही स्थिति बनी रहीं। क्योंकि कुषाण शासक भी बौद्ध थे। अतएव, मन्दिरों का निर्माण इस काल तक नहीं हो सका। कुषाण-काल के अन्त होने पर भारतवर्ष गुप्तवंश के अधीन हो गया।

गुप्तवंश का आधिपत्य सुदूर दक्षिण तक था। इन्होंने ब्राह्मण-धर्म को बढ़ावा दिया। देवी-देवताओं की पूजा के साथ ही देवालयों का निर्माण भी होने लगा। वस्तुतः देवालयों का निर्माण गुप्तकाल से ही प्रारंभ हुआ है। प्रारम्भिक मन्दिरों का वास्तु-विन्यास बौद्ध-विहारों से प्रभावित था। इनकी छतें चिपटी होती थीं तथा इनमें गर्भगृह होता था। गर्भगृह के समक्ष स्तंभों पर आश्रित एक छोटा अथवा बड़ा बरामदा होता था। अतएव, उत्तर और दक्षिण भारत की स्थापत्य-कला में सादृश्य है। गुप्तयुग के बाद भारत की शक्ति छिन्न भिन्न हो गई। देश कई छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। इसका प्रभाव स्थापत्य-कला पर भी पड़ा। इसकी एकरूपता समाप्त हो गई। सातवीं शती की मंदिर-वास्तुकला में एक नई चेतना दिखलाई पड़ती है, जो स्थानीय विशेषताओं के साथ आविर्भूत हुई। देव वास्तु के अनुसार भारत के मंदिरों को साधारणतया तीन शैलियों में वर्गीकृत किया गया है :

1. उत्तर भारत के मंदिर (नागर-मंदिर)
2. मध्यवर्ती भारत के मंदिर (चालुक्य अथवा बेसर-मंदिर)
3. दक्षिण भारत के मंदिर (द्रविड़-मंदिर)

(1) नागर- "नागर" शब्द नगर से बना है। सर्वप्रथम, नगर में निर्माण होने के कारण अथवा संख्या में बाहुल्य होने के कारण इन्हें नागर की संज्ञा दी गई। शिल्पशास्त्र के अनुसार नागर मन्दिरों के आठ प्रमुख अंग हैं।

(1) मूल या आधार–जिन पर संपूर्ण भवन खड़ा किया जाता है।

(2) मसूरक–नींव और दीवारों के बीच का भाग।

(3) जंघा–दीवारें (विशेष रूप से गर्भगृह आदि की दीवारें)।

(4) कपोत–कार्निस।

(5) शिखर–मन्दिर का शीर्षभाग अथवा गर्भ गृह का ऊपरी भाग।

(6) ग्रीवा–शिखर का ऊपरी भाग।

(7) वर्तुलाकार आमलक–शिखर के शीर्ष पर कलश के नीचे का भाग।

(8) कलश–शिखर का शीर्षभाग।

१. **नागर**-मन्दिर वर्गाकार होते हैं। वर्गाकार गर्भगृह की ऊपरी बनावट ऊँची मीनार जैसी होती है। इनके शिखर की रेखाएँ तिरछी और चोटी की ओर झुकी होती हैं तथा शीर्ष आमलक से सुशोभित रहता है। हिमालय एवं विध्य-पर्वतमाला के मध्यस्थ क्षेत्र में नागर-शैली के मन्दिर विस्तृत है। प्रांतीय भेद के अनुरूप ही इस शैली के मन्दिरों के विविध नाम है। उदाहरणार्थ, उड़ीसा के नागर-मंदिरों को कालिंग, गुजरात में लाट तथा हिमालय-क्षेत्र में इनको ही पर्वतीय मंदिर कहा गया है। पर्सी ब्राउन ने नागर शैली को ही उत्तरभारतीय आर्यशैली (North Indo - Aryan Style) की संज्ञा दी है।

(२) द्रविड़- शैली के मंदिर "नागर" मंदिरों से सर्वथा भिन्न हैं। द्रविड़ देश में विशेष रूप से विकसित होने के कारण यह द्रविड़-शैली के नाम से विख्यात हुई। इस शैली के मंदिर का आधार भाग वर्गाकार होता है। गर्भगृह के ऊपर का भाग सीधा पिरामिडनुमा बना रहता है, जिसमें अनेक मंजिलें होती हैं। इसका शीर्षभाग गुंबदाकार, छह या आठ पहल का होता है। द्रविड़-शैली के मंदिर की प्रमुख विशेषता यह है कि ये काफी ऊँचे होते हैं तथा विशाल प्रांगण से घिरे होते हैं। प्राँगण के भीतर छोटे-बड़े अनेक मंदिर, कक्ष, जलकुण्ड आदि बने होते हैं। प्रांगण का मुख्य प्रवेशद्वार "गोपुरम्" कहलाता है। ये गोपुरम् इतने ऊँचे होते हैं कि अनेक बार मुख्य मंदिर का शिखर गौण हो जाता है। कृष्णा अथवा तुंगभद्रा नदी से कुमारी अंतरीप तक द्रविड़-शैली के मंदिर निर्मित हैं।

(3) "बेसर" का शाब्दिक अर्थ है मिश्रित। अतएव, नागर और द्रविड़-शैली के मिश्रित रूप को "बेसर" की संज्ञा दी गई है। यह विन्यास में द्रविड़ शैली का तथा रूप में नागर शैली का होता है। दो विभिन्न शैलियों के कारण उत्तर और दक्षिण के विस्तृत क्षेत्र के बीच स्वतः एक क्षेत्र बन गया जहाँ इनके मिश्रित रूप में बेसर-शैली प्रस्फुटित हुई। इस शैली के मंदिर विंध्य-पर्वतमाला से कृष्णा नदी तक

निर्मित हैं। लेकिन, कला का क्षेत्र असीम है, उसे सीमाबद्ध करना असंभव है। अतएव, शैली भी अपनी सीमाएँ भेदकर उत्तर-दक्षिण चली गई हैं। यही कारण है कि नागर शैली के कुछ मंदिर दक्षिण में तथा द्रविड़-शैली के मंदिर उत्तर भारत में भी पाये जाते हैं। वृन्दावन का गोपुरम्-युक्त विशाल वैष्णव मंदिर द्रविड़-शैली की ही कृति है। इस मिश्रित शैली के मंदिर पश्चात्कालीन चालुक्य नरेशों ने कन्नड़ जिले में तथा होयसल-नरेशों ने मैसूर में निर्मित किये। पूर्व चालुक्य-नरेशों ने ऐहोल में द्रविड़-विन्यास तथा नागर रूप के मंदिरों का निर्माण किया एवं उत्तर-चालुक्य काल में नागर विन्यास तथा द्रविड़-रूप के मंदिर निर्मित हुये। ये मंदिर वृत्तायत या द्रव्यास्तवृत अर्थात् उनके आमने-सामने के दो पहल सीधे होते थे और अन्य दो झुके हुए। उनका निचला भाग ग्रीवा तक वर्गाकार होता था तथा शीर्ष वृत्ताकार बनाये जाते थे, ताकि गोलाकार शिखर से वे मंडित किये जा सके। शिल्पविशारदों के लिए बेसर-शैली एक विवादास्पद विषय बनी हुई है। संभव है, बेसर-मंदिरों से उनका अभिप्राय चालुक्य-मंदिरों से ही हो। शिल्पशास्त्र में वर्णित परिभाषा के अनुसार, बेसर-मंदिरों का अग्रभाग वर्गाकार तथा भीतरी भाग वृत्ताकार होना चाहिए। लेकिन, चालुक्य-मंदिरों का वास्तु विन्यास इससे सर्वथा भिन्न है। इसलिए, चालुक्य-मंदिरों को एक पृथक् श्रेणी में रखना ही अधिक उपयुक्त होगा। उपयुक्त विश्लेषण से यही सिद्ध होता है कि भारत में मंदिर-स्थापत्य का विकास क्षेत्रीय अथवा भौगोलिक आधार पर हुआ है। उत्तर में नगर मंदिर, दक्षिण में द्रविड़-मंदिर औरदोनों के बीच बेसर-मंदिर बने।

सहायक ग्रंथ सूची-

1. उपाध्याय, बी, **गुप्त-साम्राज्य का इतिहास** (दो खंडों में), इलाहाबाद, सन् 1952 ई०
2. **पूर्व-मध्यकालीन भारत**, प्रयाग, संवत् 2009 विक्रम
3. उपाध्याय, बी०एस०, **स्तूप, गुहा एवं मंदिर**, बिहार-हिंदी- ग्रन्थ अकादमी,पटना
4. कनिंघम, ए०, **आर्कियोलॉजिकल सर्वे आफ इंडिया रिपोर्ट** दिल्ली, सन् 1972 ई०
5. कैमरिश एस०, **द हिंदू टेंपल्स** (दो खंडों में), कलकत्ता, सन् 1946 ई०
6. गुप्ता, पी०एल०, **गुप्त-साम्राज्य**, वाराणसी, 1970 ई०
7. ग्रेवली, एफ.एच,एन, **आउटलाइन ऑफ इंडियन टेंपल्स आर्किटेक्चर**, मद्रास, सन् 1950

8. जौहरी, एम०, **चोल और उनकी कला**, भारतीय विद्या-प्रकाशन, सन् 1929 ई०

9. बरुआ, बी०एम०, **गया एंड बोधगया**, कलकत्ता, सन् 1936 ई०

10. भट्टाचार्य, टी०पी०, **ए स्टडी न वास्तुविद्या,** पटना, सन् 1947 ई०

11. मुखर्जी, आर०के०, **भारत की संस्कृति और कला** दिल्ली, सन् 1959 ई०

12. सिन्हा, बी०पी०, **भारतीय कला को बिहार की देन**, पटना, सन् 1958 ई०